डॉ0 राममनोहर लोहिया की दृष्टि में समाज एवं भाषा का प्रश्न

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव,

एसोसिएट प्रोफेसर–हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
डी0 एस0 एम0 राष्ट्रीय पुनर्वास विश्वविद्यालय,लखनऊ,उ.प्र.

वस्तुतः डॉ0 लोहिया के विचार एक दूसरे से इस प्रकार अन्तर्संबंधित हैं, जिसे अलग–अलग करके आत्मसात् करना असंभव है, वह चाहें समाज संबंधी हों, नारी संबंधी हों या हिन्दी भाषा के प्रति प्रेम से जुड़े हों। डॉ0 लोहिया का सारा चिंतन संगठित है और यही कारण है कि ''कोई एक समस्या दूसरी से अलग नजर नहीं आती।....यह चिंतन पद्धति एक प्रकार का आत्मसंघर्ष है। हिन्दुस्तानी जाति के मौजूदा और पिछले इतिहास का अध्ययन तकलीफदेह है और इस तकलीफ की स्पष्ट छाप डॉ0 लोहिया की पुस्तकों पर है।.... उनकी यह तकलीफ हर उस व्यक्ति के लिए है जो अपने समय से बंधा हुआ होकर भी अजनबी है। डॉ0 लोहिया हिन्दुस्तानी समाज के आत्म निर्वासित हैं–समाज ने उन्हें देश निकाला नहीं दिया बल्कि स्वयं श्री लोहिया ने निर्वासन पसंद किया। इस तरह का निर्वासन आज के हर विद्रोही की नियति है।''[1]

डा0 लोहिया शिक्षा के महत्व पर विशेष ध्यान देने की बात करते हुए कहते हैं कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। डा0 लोहिया की यह दृढ़ मान्यता थी कि जनता के प्रतिनिधि को पढ़ा–लिखा एवं योग्य होना चाहिए जिससे वह नागरिकों का सही प्रतिनिधित्व कर सके। पढ़ा–लिखा योग्य व्यक्ति अपनी जबाबदेही अधिक उचित ढंग से समझता है । डा0 लोहिया ने फिर ह्रदय परिवर्तन के महत्व पर बल दिया और कहा कि '' ह्रदय परिवर्तन गांधी जी का केवल बड़े लोगों के लिए नहीं था , बल्कि कमजोर लोगों के लिए था जिससे उनके दिल की कमजोरी दूर हो और वे जुल्म करने वालों के खिलाफ तनकर खड़े हो सकें। मारो, अगर मार सकते हो,लेकिन हम तो अपने हक पर अड़े रहेगें। यह है सिविल नाफरमानी का मतलब।

डॉ0 राममनोहर लोहिया इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि किसी भी समाज को समरस बनाने के लिए भाषिक समझ आवश्यक है, लेकिन वह भाषा देश भाषा हो। वह इस बात से भी भिज्ञ थे कि, ''भाषा का प्रकार्य विचार विनिमय को संभव बनाता है अर्थात् भाषा एक आधार है, जो समाज के अस्तित्व के साथ अस्तित्व में आती है और उसके नष्ट होने के साथ ही नष्ट हो सकती है। वह समाज के निर्माण और विकास के साथ ही निर्मित और विकसित होती है, समाज से अलग कोई भाषा नहीं होती हैं। इसलिए भाषा और उसके विकास को तभी समझा जा सकता है जबकि इनका अध्ययन इनसे अविभाज्य रूप से जुड़े, समाज के इतिहास के साथ किया जाए, उस जनता के इतिहास के साथ किया जाए जिसकी वह भाषा है और जो इसकी निर्मात्री और धारक है। भाषा के माध्यम से समाज सृजनात्मक सक्रियता के लक्ष्य निश्चित कर पाता है। इसके बिना वह विघटित हो जाता है। यानी भाषा समाज के विकास और संघर्ष की वाहिका है। यही नहीं भाषा अपनी कार्यकारी भूमिका में मनुष्य मात्र के संपर्क–साधन के रूप में व्यवहृत होती हैं। इसके कारण वह प्रत्येक परिवर्तन के प्रति संवेदनशील होती है और प्रत्येक स्तर पर ग्रहणशीलता का परिचय देती है। भाषाएँ अतीत के लम्बे अंतराल में विकसित होती हैं और फिर

राष्ट्रभाषा का अनुवर्ती विकास का क्रम चलता चलता है। इस क्रम में प्रत्येक स्तर पर भाषा का स्वभाव समाज के हर सदस्य के साथ एक जैसा होता है। अतः राष्ट्र के प्रत्येक सदस्य के बीच प्रथमतः संपर्क सूत्र का काम करती है, वह सामान्य भाषा होती है न कि वर्ग की भाषा। कुलीनता या जनभाषा का व्यवहार समाज में विविध वर्गों में बोली जाने वाली भाषा के आधार पर साहित्यालोचन में भले ही चलता हो, लेकिन यह भाषा वैज्ञानिक आदर्श नहीं है।''[2]

वर्तमान में भाषा का प्रश्न भी देश के जनजीवन को आन्दोलित कर रहा है, इस पर भी डा0 लोहिया के विचार सर्वाधिक विचारणीय हैं। डा0 लोहिया भारत जैसे विकासशील एवं निर्धन देश के लिये राष्ट्रभाषा के रूप में ऐसी भाषा को स्थायित्व प्रदान करना चाहते थे जो देश की बहुसंख्यक आबादी आसानी से समझ एवं पढ़–लिख सके। इस तरह की भाषा में डा0 लोहिया ने भारतीय समाज में हिन्दी भाषा को स्थापित करना चाहा। डा0 लोहिया कहते थे कि लोकभाषाओं को स्थानीय कार्यों के लिए स्थान देना चाहिए, क्षेत्र–विशेष में क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग खुलकर होना चाहिए। इससे वहाi के लोगों का विकास तो होगा ही,साथ ही भाषा का भी विकास होगा।

डॉ0 राममनोहर लोहिया राष्ट्रीयता के प्रश्न को भाषा के साथ जोड़कर 'अंग्रेजी हटाओ' का आंदोलन ही नहीं छेड़ते हैं अपितु इसके गहरे निहितार्थ, पुख्ता तर्क और सामाजिक सांस्कृतिक औचित्य भी सिद्ध करते हैं। वह स्पष्टतः घोषणा करते हैं कि, ''अंग्रेजी भाषा से न तो शरीर को आराम न मन का सुख मिल सकता है। जहाँ आज एक मन गेहूँ या चावल पैदा होता है, वहाँ दूसरे कारण भी हैं, जिनको दूर करना पड़ेगा, लेकिन अंग्रेजी मात्र के हट जाने से मेरा विश्वास है कि दो मन होने लगेगा। जहाँ एक मशीन बनती हैं वहाँ दो मशीन बनने लगेंगी। और यह बात मैं आपको तर्क के साथ बताऊँगा कि खेती कारखाने का सुधार, बढ़ती पैदावार,मात्र मातृभाषा और जन–भाषा के इस्तेमाल से होगी।'' इसके लिए उन्होंने ईसाई भाषा की प्रवर्तक आरमीक भाषा और इनकी धार्मिक भाषा को कृष्टोस कहते हुए उनके अंग्रेजी प्रयोग को एक सिरे से खारिज करते हैं। क्योंकि जहाँ कहीं ईसाई हैं, जर्मनी में जर्मन, मेक्सिकों में जहाँ की भाषा स्पेनी हो चुकी है स्पेनी, इंगलिस्तान में अंग्रेजी में, अपना धर्म चलाते हैं। इसका कारण वह बताते हैं कि–शब्द आसमान से नहीं टपकता, शब्द जुड़ा हुआ रहता है, देश की मिट्टी के साथ, देश के इतिहास के साथ, कथाओं और किवदंतियों के साथ। जैसे गंगा शब्द कोई सुनता है भारतवर्ष में, तो गंगा का जो मतलब होता है, वह न जाने कितना ढेर–सा चित्र दिमाग में एक साथ आ जाता है। तो शब्द अकेला नहीं होता। ''मैं इतना कहूँगा कि मन का सुख अंग्रेजी के द्वारा प्राप्त करना असंभव है, सहायक हो सकता है। अपनी नींव अलग से रखो, और उसमें और भी कई भाषाओं का मजा लेना चाहो और उतनी फुर्सत हो तो ले सकते हो। एक चीज याद रखना, यह सब इसलिए नहीं है कि अंग्रेजी विदेशी भाषा है। यह तो है ही। लेकिन खाली विदेशी होने से बात समझ में नहीं आती। विदेशी भाषा लेकिन उसके साथ ही साथ सामंती भाषा है, ठाट–बाट की, शान–शौकत की, बड़े लोगों की, धनवानों की ,एक प्रतिशत लोगों की सामंती भाषा है। और अपने देश पर संस्कृति का यह कोढ़ फूट रहा है–एक तरफ सामंती संस्कृति और दूसरी तरफ जनता की संस्कृति, जो डेढ़–दो हजार वर्ष से चली आ रही है।''[3]

भाषा के स्तर पर डॉ0 लोहिया ,गाँधी जी से भी प्रभावित होकर आजीवन संघर्षरत रहे। क्योंकि जिस प्रकार गाँधी जी हिन्द स्वराज्य में लिखते हैं कि, ''हर पढ़े–लिखे हिन्दुस्तानी को अपनी भाषा का, हिन्दू को संस्कृत का, मुसलमान को अरबी का, पारसी को फारसी का और सबको हिन्दी का ज्ञान होना चाहिए। उत्तरी और पश्चिमी हिन्दुस्तान

के लोगों को तमिल सीखनी चाहिए। सारे हिन्दुस्तान के लिए जो भाषा चाहिए, वह तो हिन्दी ही होनी चाहिए।''दूसरी तरफ डॉ0 लोहिया हिन्दी के लिए अंग्रेजी को सबसे बड़ा खतरा मानते थे क्योंकि उनका स्पष्ट विचार था कि–आज अंग्रेजी भाषा के बढ़ते एकाधिकार को तोड़ने की जरूरत है क्योंकि पूँजी, आतंक, और तकनीक की तरह यह भाषा भी नेतृत्व और वर्चस्व का अधिकार बन गयी है। वैश्वीकरण के इस समय में प्रभावी राष्ट्र अपनी भाषा को जबरन थोप रहे हैं। इस खतरे को चीन, जापान और यूरोप के कुछ देशों ने समय से भाँप लिया था। इसलिए वे अपनी भाषा को किसी भी सूरत में छोड़ने को तैयार नहीं थे। डॉलर को पीटने के लिए 'यूरो' को अपनाने वाले देश आज भी अंग्रेजी से परहेज कर रहे हैं। इन देशों ने अंग्रेजी को प्रगति का पर्याय न मानकर एक अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किया कि मातृभाषा में वह क्षमता है जो ज्ञान, गौरव और स्वाभिमान प्रदान करती है। डॉ0 लोहिया का स्पष्ट विचार था कि भाषा जोड़ने का काम करती है, तोड़ने का काम वह तब करने लगती है जब वह स्वार्थी हाथ का खिलौना बन जाती है।''[4]

प्रश्न उठना लाजमी है कि आखिर वो कौन से कारक हैं कि स्वतंत्र भारत में भी हम हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिलाने के लिए आज भी संघर्षरत हैं ? विद्वानों ने राष्ट्रभाषा के बदले इसे 'संपर्क भाषा' के रूप में प्रस्तावित किया और राजभाषा के सिंहासन पर बैठाने की संवैधानिक घोषणा की जिस पर वास्तव में अंग्रेजी विराजमान थी, और है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में हिन्दी के साथ यह व्यवहार राजसत्ता की ओर से किया जा रहा था जो पूरी तरह अंग्रेजी के पक्षधर थी। नेहरू की नीतियों में भी ऐसे कई कारक थे, जिससे वह हिन्दी को उलझाए रखना चाहते थे। फलतः डॉ0 लोहिया के अंग्रेजी हटाओ आन्दोलन के बावजूद हिन्दी के प्रति सत्ता पक्ष का दृष्टिकोण नहीं बदला। इस संदर्भ में डॉ0 लोहिया के शब्दों में कहें तो 'हिन्दी के साथ सबसे बड़ी झंझट यह हुई कि इसका, अभिषेक तो हो गया पर तिलक नहीं लगा, या तिलक तो लग गया पर अभिषेक नहीं हुआ। लिख तो दिया हो गयी हिन्दी हिन्दुस्तान की भाषा, लेकिन तिलक चढ़ा नहीं। नतीजा यह हुआ कि काम हुआ नहीं लेकिन लोगों का मन बिगड़ गया। बंगाली, तमिल, तेलगू जितने थे उनको मौका मिल गया और वे एक सैकडा लोग थे, उनको मौका मिल गया कि वे चारों तरफ इसके खिलाफ आवाज उठा दें। तो अब इसका सबसे अच्छा तरीका क्या होता है कि और सूबे में चाहें जो हों, लेकिन बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान और हरियाणा उन पाँच सूबों में अंग्रेजी को फौरन हटा देना चाहिए। मैं नहीं कहता बंगाल में हटाओ, तेलगू देश में हटाओ, तमिल देश में हटाओ। वैसे मुझसे पूछेंगे तो मैं उन्हें भी यही जवाब दूँगा।.....प्रधानमंत्री ने आश्वासन दे दिया कि अंग्रेजी तो तब तक नहीं हटेगी जब तक गैर हिन्दी सूबे राजी नहीं हो जाएँगे, तो प्रधानमंत्री का आश्वासन बड़ा कि संविधान का आश्वासन बड़ा। मुझे तो यह देश कभी–कभी समझ में नहीं आता। एक आदमी का आश्वासन इतना बड़ा हो गया कि सबसे बड़ा कानून है दस्तूर है, उसमें जो लिखा हुआ है सब मटियामेट। इसके अलावा सारे देश की भलाई करना होगा या एक आदमी के पीछे दौड़ना पड़ेगा। सारे देश की भलाई अब इसी में है कि तेलगू, तमिल और बंगाली लोगों से बहस करना बंद करे। और वे लोग जब कभी उनकी इच्छा में आये हिन्दी को अपनाये।''[5]

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि डॉ0 लोहिया भाषा के स्तर पर क्षेत्रीय भाषाओं का पूरा सम्मान करते हैं। यही कारण था कि डॉ0 लोहिया भी मानते थे कि–हिन्दी की दुर्दशा आज ऐसे ही बुद्धिजीवियों के कारण हुई है जिन्हें इतना भी नहीं पता कि है कि हिन्दी 900 साल से भी अधिक पुरानी है। हम जब तक अपनी ही भाषा को नहीं जानेंगे तो लड़ेंगे कैसे? उसी का फायदा

अंग्रेजी परस्त लोग और बुद्धिजीवी उठा रहें हैं। अतः हिन्दी की सबसे बड़ी दुर्गति साठ के दशक में हुई क्योंकि इसी समय उत्तर में 'अंग्रेजी हटाओ' और दक्षिण भारत में 'हिन्दी हटाओ'[6] के राजनैतिक दाव–पेंच में भाषा कैसे प्रभावित होती है। यह देखने को मिला। इस तरह डॉ0 राममनोहर लोहिया ने न केवल हिन्दी अपितु सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं का समर्थन करके समकालीन समस्याओं से मुक्त करके सर्जना के स्तर पर भाषिक एकीकरण करते हुए सांस्कृतिक समानता की बात को सिद्ध करने का प्रयास किया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वर्मा श्रीकांत रचनावली,खंड–3, पृष्ठ–67–68 एवं स्त्री मुक्ति : लोहिया की आवाज–एवं अरविन्द त्रिपाठी, कथाक्रम, अप्रैल–जून 2011,पृष्ठ–46
2. कुमार विपिन, छमाही पत्रिका अनिश,जनवरी–जून 2010,पृष्ठ–62–63
3. शरद ओंकार (संपादक)–समता और संपन्नता (डॉ0 राममनोहर लोहिया के अप्रकाशित लेख) लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण :1996, पृष्ठ–90
4. कपूर मस्तराम–डॉ0 राममनोहर लोहिया, वर्तमान संदर्भ में, अनामिका प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण : 2009, पृष्ठ–146
5. शरद ओंकार (संपादक)–समता और संपन्नता (डॉ0 राममनोहर लोहिया के अप्रकाशित लेख)–लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण :1996,पृष्ठ–101
6. शरण शंकर–विखंडन की संस्कृति, संपादकीय,जनसत्ता समाचार पत्र, 31 दिसंबर 2011,पृष्ठ–6,

Copyright © 2017, Dr. Virendra Singh Yadav. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.